walking out...

स्वपथगामी

walking on...

अंक – 1 मार्च 2004

''अपने सपनों को जीवित रखते हुए उन्हें साकार करने की प्रक्रिया में स्वयं को वॉकआउट के रूप में देखता हूँ।''
– रोहित सूद (दार्जीलिंग)

''दिमागी रूप से गुलाम बनाने वाली हरेक व्यवस्था और मानसिकता से मुक्ति पाना, वॉकआउट होना है।''
– किशन प्रजापत (उदयपुर)

''जब मुझे लगा कि मेरी समाजशास्त्र की वो पढ़ाई मुझसे, मेरे समुदाय से, मेरे परिवेश व सच्चाई से बहुत दूर और विरोधाभासी है, तो मैने सोच समझकर इस पाखण्ड से पिंड छुड़ाने का निर्णय ले लिया।''
– विधि जैन (उदयपुर)

''अन्तर्मन री प्रेरणा ऊँ नवा गेला भाळणा अर वणी परे अमल करणो। आपणे हाथाऊं छोटा छोटा विकल्प वणावणा, म्हारी नजर में स्वपथगामी रो एक अरथ है।''
– पन्नालाल पटेल (मेवाड़)

''वॉकआउट अपनी योग्यता और क्षमताओं की पुष्टि के लिए किसी प्रकार के प्रमाण पत्र या डिग्री के मोहताज नहीं है।''
– नितिन परांजपे (नाशिक)

''मेरे लिए वॉकआउट होने का अर्थ अनुसरण की मानसिकता से हटकर अपने जीवन के रास्तों को स्वयं तलाशना है।''
– गोपाल शर्मा (राजसमन्द)

''अपने विवेक और हाथों का इस्तेमाल सहज व खुले रूप से करना तथा सहजता पर लगने वाले अंकुश और बन्धनों से निकलना, वॉकआउट की स्वाभाविक विशेषता है।''
– सन्दीप चव्हाण (नाशिक)

''हम आज की हिंसक आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था (या वैश्वीकरण की प्रक्रिया) से बाहर निकलकर कुछ करें, जिसमें हम वास्तविक आज़ादी का अनुभव कर सकें। ऐसे प्रयोगों की ओर अग्रसर 'वॉकआउट' सच्ची आजादी के प्रतीक हैं।''
– रवि गुलाटी (दिल्ली)

''माझ्या मते स्वपथगामी म्हणजे माझ्या जीवनाची दिशा ठरविणारा कोणी अजून नसून मी स्वयं आहे.''
– गायत्री (अमरावती)

सृजनात्मक जीवन के प्रतीक हैं 'वॉकआउट'

'वॉकआउट' (स्वपथगामी) का अभिप्राय उन लोगों से है, जो मानसिक गुलामी के चक्रव्यूह से निकलकर सीखने और शोषणमुक्त जीवन जीने के पथ स्वयं बना रहे हैं, विवेक और कल्पनाशक्ति को छीन लेने वाली व्यवस्था को चुनौती देकर नए–नए विकल्प बना रहे हैं। वॉकआउट होने का अर्थ केवल स्कूल, कॉलेज, बाजार या गुलाम मानसिकता की पोषक अन्य किसी व्यवस्था को छोड़ देना या नकार देना मात्र नहीं है और न ही इसका अर्थ इन चुनौतियों से भागना है। बल्कि ये समस्याओं, चुनौतियों को अलग नजर से पहचानकर अलग–अलग विकल्प खड़े कर रहें हैं।

विविधतापूर्ण दुनिया के निर्माण के पक्षधर वॉकआउट स्वयं को किसी एक परिभाषा में न बाँधकर अलग–अलग प्रकार से अभिव्यक्त करते हैं। आपके जीवन में स्वपथगामी होने का क्या अर्थ है? आइए, आप भी इस प्रक्रिया में अपने विचार बाँटिए।

'खेती से हर दिन नया सीखता हूँ'

मेरा जन्म एक प्रयोगधर्मी परिवार में हुआ। मेरे पिताजी ने शहरी जीवन अपनाने के बजाय गाँव आकर जैविक खेती करने का निर्णय लिया था। मेरी माँ का लालन–पालन आचार्य विनोबा भावे के सानिध्य में हुआ। वे कभी स्कूल नहीं गईं, आश्रम में ही उन्होंने जीवन व समाज के सभी पहलुओं का ज्ञान प्राप्त किया।

बचपन से ही मेरा स्वभाव करते–करते सीखने का रहा है, जिसमें मेरी गलतियों का काफी महत्त्व रहा है। लेकिन स्कूल में इसका अवसर नहीं था। बचपन में मैं सोचता था कि मैट्रिक के बाद मैं विज्ञान विषय लूँगा, जिसमें मुझे प्रेक्टिकल करने का भरपूर मौका मिलेगा। लेकिन वहाँ भी प्रेक्टिकल के नाम पर 'नमूना' लेकर उसका विश्लेषण करना और रासायनिक तत्वों को मिलाने की क्रिया जैसे काम करने होते थे, किन्तु इनमें हाथों से करने का अवसर कम था। अधिकांश काम कागजों पर ही करना होता था।

बी. एस सी. के दौरान हमें समुद्री जीवों और हिमालय की वनस्पतियों के विषयों में अधिक जानकारी दी जाती थी, जबकि स्थानीय जीवों और वनस्पतियों के विषय में जानने–सीखने का वहाँ कोई मौका नहीं था। मैं अपने स्थानीय परिवेश के बारे में अधिक जानना चाहता था, क्योंकि वो हमारे रोज के जीवन से जुड़ा होता है। इसलिए मैंने कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर जैविक खेती को अपने जीवन का आधार बनाया, जिसमें मैं स्वयं काम करते हुए सीख रहा हूँ। स्कूल में मैं नम्बरों के लिए पढ़ाई करता था और वह भी किसी और के आदेश से। अब मैं अपनी जिज्ञासा की पूर्ति के लिए अलग–अलग किताबें पढ़ता हूँ।

माता–पिता ने मुझे कभी डिग्री प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं किया। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं कॉलेज छोड़ना चाहता हूँ, तो उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया। उन्होंने कहा कि अब तुम्हारी वास्तविक क्षमता अभिव्यक्त होगी, जो स्कूल में दब गई थी।

> **"जब तक किसान अपने काम के लिए प्रकृति की सेवा करता है, सब ठीक रहता है। पहले के जमाने में खेती एक पवित्र कर्म होती थी। जब मानवता ने इस आदर्श को भुलाया, तभी से व्यापारिक खेती का उद्भव हुआ। जैसे ही किसान ने पैसे कमाने के लिए फसलें उगाना शुरू किया, वह खेती के असली सिद्धान्तों को भूल गया।"**
>
> *– फुकुओका*

खेती से मुझे हर दिन नया सीखने को मिलता है। मैं अपने गाँव के लोगों के अनुभवों से सीखता हूँ। मैं सोचता हूँ कि दुनिया में खेती का काम बन्द हो जाए तो क्या होगा? इसलिए मैं अपने जीवन और जीविका का साधन इसी को मानता हूँ। यह काम मेरे लिए सहजता से उपलब्ध है। खेती में मेरी रुचि बचपन से ही रही है। मेरे गाँव के स्कूल जाने वाले युवाओं को खेती जैसे काम में शर्म आती है, लेकिन मुझे खेती में आनन्द मिलता है।

मेरे पिता विगत 20 वर्षों से जैविक खेती (जिसमें रासायनिक खाद, दवाइयों और हाइब्रिड बीज का इस्तेमाल नहीं करते) कर रहे हैं। पिताजी को फुकुओका की किताब 'एक तिनके से आई क्रान्ति' पढ़कर बहुत प्रेरणा मिली। वर्तमान में वे स्थानीय परिवेश और अनुभवों के आधार पर खेती कर रहे हैं।

खेत की मिट्टी में असंख्य जीवाणु–कीटाणु काम कर रहे हैं, उनके काम को किसी प्रकार बाधित न करते हुए हम खेती कर रहे हैं। इससे मिट्टी की उर्वरता कायम रहती है। इल्लियों और कीटों को भगाने के लिए भी रासायनिक दवाइयों का इस्तेमाल नहीं करते। यहाँ तक कि गोमूत्र से बने जैविक कीटनाशक का छिड़काव भी हम बहुत कम करते हैं। प्रकृति स्वयं कई समस्याओं का समाधान कर देती है। जैसे– फसल में लगने वाले कीटों और इल्लियों को पक्षी खा लेते हैं।

मेरा प्रयास है कि खेती स्वावलम्बी हो। बीज–खाद के मामलों में कम्पनियों की गुलामी से मुक्त हों। मैं अन्य किसान साथियों से देशी बीज भी इकट्ठे कर रहा हूँ और उन्हें बाँटता भी हूँ। हम झटपट खाद तैयार करते हैं, जिसमें गोमूत्र, गोबर, पानी और थोड़ा सा गुड़ को इकट्ठा घोलकर एक पीपे में रख दिया जाता है। गर्मियों के मौसम में 5–6 दिन में और गर्मी न हो तो दस दिन में खाद तैयार हो जाती है। इसका उपयोग करना आसान है और फसलों के लिए बहुत लाभकारी है।

खेती से मुझे जीवन का दर्शन भी मिला है। खेत से हम जो लेते हैं, उसे किसी न किसी रूप में वापस किया जाना चाहिए, तभी मिट्टी की उर्वरता कायम रहती है। खेत में उगने वाली खरपतवार को भी हम उखाड़कर बाहर नहीं फेंकते, खेत में डालते हैं।

हमने स्थानीय संसाधनों का उपयोग करके अपना घर खुद बनाया है। यह पूरी तरह मिट्टी का है, जिसमें टेढ़ी लकड़ियों का भी कुशलतापूर्वक इस्तेमाल किया गया है। यह मकान गर्मियों में ठण्डा और सर्दियों में गर्म रहता है। हमारे घर में रोशनी के लिए हम बिजली का इस्तेमाल नहीं करते। इसके लिए हम बायोगैस लैम्प का उपयोग करते हैं।

मैं सोचता हूँ कि हम लोग यदि स्थानीय संसाधनों का समुचित उपयोग करें, तो लोगों को रोजगार मिलेगा और स्थानीय स्तर पर कपड़ा, साबुन, मंजन, तेल आदि बना सकते हैं।

—विनय फुटाणे
<vinayfutane@rediffmail.com>

स्कूल का एक झूठ

'जनसंख्या वृद्धि हमारे देश की एक विकराल समस्या है! (?)'

जब मैं स्कूल में पढ़ता था, तब मुझे बताया गया कि हमारे देश की जनसंख्या बहुत तेज गति से बढ़ रही है। जनसंख्या अधिक होने के कारण ही भारत में गरीबी, बेरोजगारी, पर्यावरण–असन्तुलन, कुपोषण जैसी समस्याएँ भी तेजी से बढ़ती जा रही है। अगर हमें देश को सुखी, समृद्ध और विकसित बनाना है, तो जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करना परम आवश्यक है। सभी विकसित देशों की जनसंख्या कम हैं, इसीलिए वे समृद्ध हैं। मुझे बताया गया कि जनसंख्या वृद्धि का मूल कारण गाँवों में रहने वाले पिछड़े और अनपढ़ लोग हैं।

लेकिन मैंने महसूस किया कि जनसंख्या वृद्धि अपने आप में कोई समस्या नहीं है। भारत में अभी भी जनसंख्या घनत्व (प्रति वर्ग किमी में रहने वाली आबादी) जापान जैसे तथाकथित विकसित देश से भी कम है। अगर प्रति व्यक्ति उपभोग को भी देखा जाए, तो एक आम भारतीय तेल, लोहा, ऊर्जा, पानी का उपभोग एक अमेरिकन की तुलना में कई गुना कम करता है। मैं मानता हूँ कि भारत में आज भी बहुत सारा धन है, क्षमताएँ हैं, संसाधन है। लेकिन हम इन्हें ठीक से पहचान नहीं पा रहे हैं, इनका इस्तेमाल और वितरण ठीक तरह से नहीं कर पा रहे हैं। गरीबी और बेरोजगारी की समस्या का मूल कारण जनसंख्या वृद्धि नहीं है, बल्कि हमारे संसाधनों पर एक छोटे से वर्ग का कब्जा है। इन संसाधनों का उपयोग ऐसे उत्पादनों के लिए किया जा रहा है, जिनकी आम आदमी के जीवन में कोई जरूरत नहीं है। साथ ही ये लोग अपने मुनाफे के लिए बनावटी माँग (जैसे मोबाइल फोन) पैदा करके फालतू का उत्पादन करके उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ा रहे हैं।

यदि हम जनसंख्या जैसी नकली समस्याओं से ध्यान हटाकर अलग नज़रिये से सोचें, तो व्यवस्था पर गहरे सवाल उठा सकते हैं, अपनी जीवन शैली का सही मूल्यांकन कर सकते हैं, नवनिर्माण कर सकते हैं। केन्द्रित व्यवस्था से मुक्त होकर यदि स्थानीय स्तर पर उत्पादन और विनिमय को बढ़ावा दें व अपने जीवन को सादगी के साथ जीएँ, तो गरीबी और बेरोजगारी का समाधान सम्भव है।

— अमित गायत्री

indore_amit@rediffmail.com

बनी-बनाई दुनिया

कहानी मेरे घर की

कई बार मेरे पारिवारिक झगड़ों का कारण टीवी रहा है। कभी बच्चों के लगातार टीवी देखते रहने पर माँ की डाँट के कारण, कभी टीवी सीरियलों के पात्रों की नकल के कारण, तो कभी विज्ञापनों को देखकर फरमाइशें बढ़ने के कारण। टीवी से चिपके रहने की वजह से घर के कई जरूरी कामों के लिए भी वक्त नहीं मिल पाता था। टीवी सीरियलों की चर्चा के चक्कर में परिवार के सदस्यों की कोई चिन्ता नहीं रहती। मैं भी खाली समय में मनोरंजन के नाम पर टीवी के सामने बैठकर अपनी सृजनशीलता को टीवी की भेंट चढ़ा देता।

लेकिन जब से घर में टीवी बन्द हुआ है, परिवार के सभी सदस्य घर के कामों में अपना समय देने लगे हैं, सब अपनी जिम्मेदारी को अपने ढंग से समझने लगे हैं, बच्चे भी काम में हाथ बँटाने लगे हैं और आपसी रिश्तों को समझने लगे हैं। टीवी से मुक्त होकर मैं भी अपनी अभिव्यक्ति के माध्यमों को खोज पाया हूँ और व्यक्त कर पा रहा हूँ स्वयं को – नाटक से, गीत से, कविता से, चित्रों से और कुदरत के साथ अपनी संवेदनाओं से। मीडिया द्वारा मनोरंजन के नाम पर परोसे जा रहे मानसिक–नियन्त्रण के कार्यक्रमों को समझ रहा हूँ और अपने मनोरंजन के साधन खोजता हूँ अपने ढंग से, अपने काम के साथ। – रामावतार सिंह

*आइए! आप भी शुरूआत कीजिए, टीवी की गुलामी से मुक्त होकर कुछ नया कीजिए, **'बिन टीवी जीवन सप्ताह'** मनाइए। टीवी के आतंक और गुलामी से मुक्त होने के लिए दुनिया–भर के लाखों लोगों ने **'बिन टीवी जीवन सप्ताह' (21 से 27 अप्रैल)** मनाने की शुरूआत की है।*

यह एक कोशिश है, जिसमें हम बने–बनाए मनोरंजन से बाहर निकलकर उक्त समय को सृजनात्मक कार्यों में लगाएँ और अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम खुद विकसित करें।

वेबसाइट :
www.tvturnoff.org

कार्टूनिस्ट - रामावतार

मल्टीवर्ल्ड नेटवर्क

हम में से कई युवा स्कूल–कॉलेज से मुक्त होने की प्रक्रिया में हैं। अनेक युवा खोज में हैं, अपने जैसे साथियों की, ऐसे स्थानों की, जहाँ उन्हें अपनी क्षमताओं को पहचानने और उन्हें समृद्ध करने का मौका मिले। वे अपने जीवन का रास्ता स्वयं चुन सकें। आज हमारे सामने कॅरियर के नाम पर पेशेवर वकील, इंजीनियर, डॉक्टर, सी. ए. जैसे गिने–चुने काम हैं। स्वपथगामियों को चाहिए अपनी वह मंज़िल, जिस तक पहुँचने का रास्ता भी वे खुद बनाएँ।

मल्टीवर्ल्ड नेटवर्क एक ऐसा ही प्रयास है, जिसके माध्यम से युवा ऐसे विविध स्थानों पर जाकर विविध प्रकार के सृजनात्मक कार्यों के साथ जुड़कर अनुभवों का परस्पर आदान–प्रदान कर सकते हैं। इसमें युवाओं को कुछ ऐसे अनुभवी साथियों से मिलने और उनके साथ काम करने का मौका मिलेगा, जो समग्रता में जीवन जी रहे हैं।

इस नेटवर्क से अनेक साथी जुड़े हैं, जिनमें से कुछ साथियों का परिचय :–

1. अंजलि पंजाबी :– आप मुम्बई में फिल्म–निर्माण से जुड़ी हैं। इसके पूर्व विज्ञापन–फिल्म निर्माण का काम करती थी, लेकिन वह छोड़कर अब स्वतन्त्र रूप से कार्यरत हैं। हाल ही में आपने *मीराबाई* फिल्म का निर्माण किया है।

2. रुस्तम वानिया :– आप बैंगलोर से प्रकाशित पर्यावरण–पत्रिका *गोबर टाइम्स* के सम्पादक हैं। आपकी रुचि विशेष रूप से कार्टून बनाने, जल संवर्द्धन, मिट्टी के मकान बनाने और प्रकृति के साथ जीवन जीने में है।

3. भरत मंसाटा :– ये अर्थ केयर बुक्स प्रकाशन के संस्थापक हैं, जो वैश्वीकरण, विकास और वैकल्पिक उपचार पद्धतियों पर पुस्तकें प्रकाशित करते हैं। साथ ही ये बहुत अच्छे बाँसुरी वादक भी हैं।

यदि आप इस प्रक्रिया से जुड़ने के इच्छुक हों, तो कम से कम तीन दिन और अधिकतम 6 माह तक का समय निकालकर किसी एक स्थान पर उनके काम में शामिल हो सकते हैं या आप भी उनके साथ कुछ नए प्रयोग शुरू कर सकते हैं। इसके लिए कृपया सम्पर्क करें :–

शिल्पा जैन, 21 फतेहपुरा, उदयपुर – 04 <shilpa@swaraj.org>
नायला कोएलो, जी–8, सेंट ब्रिटो'ज अपार्टमेंट्स, फैरा अल्टा, मापुसा – 403507 (गोवा) <taleem@multiworld.org>

फिल्म समीक्षा

मॉडर्न टाइम्स : मशीनीकरण पर मार्मिक व्यंग्य

कुछ समय पहले मुझे मशहूर निर्देशक और हास्य अभिनेता चार्ली चेपलिन की यह फिल्म देखने का मौका मिला, जो उन्होंने लगभग 70 साल पहले बनाई थी। यह एक हास्यप्रधान मूक फिल्म है, जो मशीनीकरण और आधुनिक जीवन शैली पर गहरे प्रश्न खड़े करती है।

यह फिल्म मशीन और एक इंसान के बीच संघर्ष की कहानी है। फिल्म का नायक एक मिल में काम करते हुए मशीन, औजार, समय–सीमा, उपभोक्तावादी मानसिकता से लगातार जूझते हुए अपनी इंसानियत को जिन्दा रखने का प्रयास करता है। मशीनों के साथ एक ही तरह का काम करते–करते वह खुद भी मशीन जैसा बन जाता है। जब वह इस टेक्नोलॉजी का प्रतिकार करता है, तो व्यवस्था द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। यहाँ तक कि उसे पागलखाने भेज दिया जाता है। पागलखाने से निकलने के बाद भी वह बार–बार इस व्यवस्था का शिकार होता है। लगातार कड़ी मेहनत और संघर्ष के बावजूद जब उसे राहत नहीं मिलती तो वह भी इस मानसिकता से ग्रस्त होने लगता है कि बिना श्रम के ही उसे सब–कुछ मिल जाये।

फिल्म में बताया गया है कि किस तरह से आदमी के जीवन को कई खण्डों में बाँट दिया जाता है और इन्सानियत को खत्म कर पूंजीपति वर्ग द्वारा समाज और जन–मानस पर नियन्त्रण की साजिश की जाती है। इसमें मुझे सबसे प्रेरणादायक बात यह लगी कि नायक मुश्किलों से घबराने के बजाय उन्हें चुनौती के रूप में लेता है और अपने जीवन में आशा और जोश खत्म नहीं होने देता।

आज मैं अपने आसपास देखता हूँ, तो मुझे इस तरह के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। मेरे कई ऐसे दोस्त और रिश्तेदार हैं, जो फैक्ट्रियों में काम करते हैं। फैक्ट्री में होने वाले उत्पादन से उनका कोई सरोकार नहीं है, उनको केवल अपनी मजदूरी से मतलब है। इससे मैंने सोचना शुरू किया कि मैं किस प्रकार का जीवन जीना चाहता हूँ? तकनीकी और श्रम के बीच में कैसे समन्वय बिठा सकता हूँ?

आजकल मैं चरखा चलाता हूँ। बेशक यह भी एक मशीन है, मगर यह किसी के हाथ से काम नहीं छीनता, बल्कि काम करने की क्षमता को बढ़ाता है। इस काम से न तो किसी का शोषण होता है और न ही प्रकृति को कोई नुकसान होता है। जबसे मैंने यह काम शुरू किया है, मैं अपनी जरूरतों पर भी अलग तरह से विचार कर रहा हूँ। इसके साथ ही मुझे लगता है कि इस काम को समग्रता से समझना चाहिए। इसलिए मैं कपास उगाने से लेकर कपड़ा शरीर पर आने तक की पूरी प्रक्रिया को भी सीखना चाहता हूँ।

– किशन प्रजापत
<k_prajapat24@rediffmail.com>

'मेरे काम में ही आराम, मेरी कला में ही आनन्द'

उदयपुर में रहने वाले 33 वर्षीय श्री राजाराम शर्मा पारम्परिक चित्र–शैली 'पिछवाई' के कलाकार हैं, जो स्वयं एक स्वपथगामी हैं। आप आधुनिकता की चकाचौंध से मुक्त सादा जीवन जीते हुए कला–साधना में लगे हैं। आपके साथ ही 3 युवा भी काम करते हुए सीख रहे हैं। प्रस्तुत हैं, उनसे हुई बातचीत के अंश :–

आपके जीवन में कला की शुरूआत कैसे हुई?

मेरा परिवार परम्परागत रूप से पिछवाई कला से जुड़ा रहा है। जब मैं 13 साल का था, उसी दौरान चित्रकला में मेरी रुचि देखकर पिताजी ने मुझे पिछवाई कला सीखने के लिए नाथद्वारा में एक गुरु के पास भेजा। स्कूल में रहकर मैं यह कला नहीं सीख सकता था, इसलिए कक्षा 6 के बाद स्कूल छोड़ दिया। उसके बाद से अब तक इसी कला से जुड़ा हूँ।

पिछवाई कला क्या है?

पिछवाई का अर्थ है – श्रीनाथजी की मूर्ति के पीछे लगाई जाने वाली पेंटिंग, जो सूती कपड़े पर बनाई जाती है। पिछवाई कला के अन्तर्गत कृष्णलीला के विभिन्न विषयों पर पेंटिंग बनाकर मन्दिर को सजाया जाता है। श्रीनाथ जी के मन्दिर में साल में कई त्योंहार मनाये जाते है, हर त्योंहार पर उनका अलग श्रृंगार किया जाता है एवं अलग पिछवाई लगाई जाती है।

कला सीखने की प्रक्रिया में क्या चुनौतियाँ हैं?

पिछवाई सीखने के लिए बहुत धैर्य और मेहनत की जरूरत है। लोग कला को बहुत सीमित दायरे में देखते हैं। कई लोग समझते हैं कि डिग्री ले लें, फिर कला सीख लेंगे। लेकिन मैंने अनुभव किया है कि जिन्होंने कॉलेज में कला की पढ़ाई की है, उनके लिए पिछवाई सीखना मुश्किल है।

जीवन के साथ कला का क्या सम्बन्ध हैं?

मेरे लिए हर जरूरत की पूर्ति इस कला में है। जैसे मन्दिर में सेवा करने वाला व्यक्ति भगवान की मूर्ति का श्रृंगार करता है, वैसे ही कलाकार भी भगवान का श्रृंगार करता है। उसका जितना भी पारिश्रमिक मिलता है, वही सन्तोषप्रद है। यदि कभी नकारात्मक मूड में भी होता हूँ, तो तनाव दूर करने के लिए कोई पेंटिंग शुरू कर देता हूँ। मेरे लिए आनन्द की अनुभूति कला में ही है।

पिछवाई के अलावा और कौनसी कला करते हैं?

मैं मिनिएचर और भित्ति चित्र भी बनाता हूँ। पिछवाई में भी परम्परा का निर्वाह करते हुए मैं सृजनात्मक प्रयोग भी करता हूँ, जिससे नया करने के मौके भी मिल जाते हैं।

आपकी कला पर आज बाज़ार का क्या प्रभाव हैं?

मैं पेंटिंग्स के लिए रंग और ब्रश स्वयं बनाता रहा हूँ। आजकल रंगों के लिए बाजार पर निर्भर होना पड़ता है। इन समस्याओं के बावजूद भी मैं प्रायः प्राकृतिक रंगों का ही इस्तेमाल करता हूँ। इस कला में मुझे पेंटिंग बनाने में काफी समय लगता है, इसलिए मैं न तो कभी प्रदर्शनी लगाता हूँ और न ही प्रतियोगिताओं के झंझट में पड़ता हूँ। मेरा मानना है कि कॉम्पीटीशन में पड़ने से कलाकार कला के वास्तविक मकसद से भटक जाता है और पुरस्कार के लालच में कभी सन्तोष नहीं मिलता।

प्रतियोगिता से हटकर आप कैसा जीवन जी रहे हैं?

इस काम में मैं इतना व्यस्त और आनन्दित होता हूँ कि आधुनिकता की दौड़ में शामिल होने की कोई आकांक्षा नहीं होती। काम में एकाग्र रहें, तो सन्तोष भी मिलता है और आराम भी। ध्यान हटता है तो तनाव होता है। इस काम से बड़ा कोई आराम नहीं है। दिन भर भगवान के चित्र बनाना, रंगों से खेलना, यही आराम है। सोने से आराम नहीं मिलता। आराम के अर्थ का विश्लेषण होना चाहिए।

पिछवाई कला कोई कैसे सीख सकता है?

यह पूरे समय का काम है। इस कला को गहराई से समझने के लिए लगन और धैर्य के साथ हर दिन 5–6 घण्टे तक अभ्यास की जरूरत है। स्कूल के साथ–साथ इस कला को सीखने का काम सम्भव नहीं। इसे शौक के रूप में नहीं अपनाया जा सकता। इसके लिए कम उम्र से ही तैयार होना अच्छा है। 16 वर्ष की उम्र के बाद इसे सीखना मुश्किल होता है।

पिछवाई सीखने के इच्छुक लोगों की आप क्या मदद कर सकते हैं?

जो लोग गम्भीरता से इस कला को सीखना चाहते हैं, उनके साथ मैं अपने अनुभव बाँटने के लिए तैयार हूँ। इसके लिए मैं किसी प्रकार की शुल्क की अपेक्षा नहीं रखता, लेकिन सीखने वाले को कम से कम 5 वर्ष तक का समय नियमित रूप से देना होगा। यहाँ कोई क्लास नहीं है। साथ–साथ काम करते हुए मैं सीखने में मदद कर सकता हूँ और वह भी एक बार में केवल दो लोगों के साथ। जो यह काम सीखना चाहता है, उसका स्वागत है। इच्छुक साथी इस पते पर सम्पर्क कर सकते हैं :– 26 ब्रहमपोल, आटा चक्की के पास, उदयपुर

सपनों की ओर बढ़ते कदम

हमारे यहाँ युवाओं का यह मानस बन गया है कि स्थानीय क्षेत्र में सीखने और करने के लिए कुछ नहीं है और सारे मौके बड़े शहरों में हैं। इसी मानसिकता का शिकार मैं भी रहा हूँ। यहाँ के बच्चे भी दूसरे शहरों में जाकर बड़े कारखानों और कंस्ट्रक्शन वर्क में उलझ जाते हैं, जिनमें न तो उन्हें आजादी मिलती है और न ही कोई फायदा होता है। वे दूसरी बहुत सी चीजें सीखने से वंचित रह जाते हैं।

एक औपचारिक स्कूल में काम करने के बाद मेरे मन में स्कूली–व्यवस्था पर प्रश्न उठने लगे। सीखने के रास्ते खुद बनाने के लिए मेरे मन में काफी विचार आ रहे हैं। मेरा सपना है कि मैं अपनी पुश्तैनी जगह केलिम्पोंग में एक लर्निंग रिसोर्स सेन्टर खोलूँ, जिसमें आस–पास के लोगों के लिये विविध चीजें सीखने के मौके स्थापित हो सकें। वहाँ एक लाइब्रेरी होगी, जिसमें स्थानीय भाषाओं की पुस्तकें होंगी, ताकि लोग अलग–अलग भाषाओं के जरिये अपनी अभिव्यक्ति को मजबूत बनाएं और स्थानीय लेखकों, कवियों व कथाकारों को भी प्रोत्साहन मिले। इसका दूसरा मकसद है, स्थानीय मौके तलाशने के लिए युवाओं के बीच संवाद शुरू किया जाए। लर्निंग सेन्टर के जरिये हम खुद की क्षमताओं को पहचानें और अपने स्थान पर ही कुछ करने की सोचें।

इसके बारे में आपके कोई सुझाव, सवाल या विचार हों, तो सम्पर्क करें। – रोहित सूद, केलिम्पोंग, प. बंगाल
<rohit_matilda@yahoo.com>

स्कूल की छुट्टी!!!

खाकी रंग की यूनिफॉर्म, तब कितनी भद्दी लगती थी!
अक्षर के जंजालों की वो पुस्तक रद्दी लगती थी।
ब्लैकबोर्ड को रोज ताकते, बैठे काल–कोठरी में,
मास्टरजी के डण्डे की वो हरकत गन्दी लगती थी।
टन–टन की आवाज़ सुनी, तो क़दम स्वयं मुड़ जाते थे।
स्कूल की छुट्टी होते ही, पंछी बन उड़ जाते थे।

रोज़ सवेरे फिर से जाना, रास कभी न आता था।
होना होता 'पास', पर उनके पास कभी न जाता था।
लेकिन उसको पास बुलाकर, कान उमेठे जाते थे,
जब पिछली लाइन में कोई छुप के गाने गाता था।
शुरू हुई जब आँख–मिचौली, पेड़ों पर चढ़ जाते थे।
स्कूल की छुट्टी होते ही, पंछी बन उड़ जाते थे।

कभी–कभी पिछले आँगन में, खेल वहाँ भी होते थे।
हार–जीत और 'तू' और 'मैं' के बीज वहीं पर बोते थे।
कभी चुनौती मिली दोस्त से, कभी मिली पड़ौसी से,
जीत गए तो ख़ुश होते, पर हार गए तो रोते थे।
अपनी हार का बदला लेने की ज़िद पर अड़ जाते थे।
लेकिन छुट्टी होते ही, फिर पंछी बन उड़ जाते थे।

रिश्तों से अब मुक्त कराकर, मुफ्त मिल रही यह शिक्षा।
ऐसी शिक्षा और परीक्षा से तो अच्छी है भिक्षा।
मर गया स्वाभिमान हमारा, ख़त्म हुई अब चौपालें,
गलियारे सुनसान गाँव के, बदल गया सारा नक्शा।
नानी के किस्सों में तारे, मोती बन झड़ जाते थे।
स्कूल की छुट्टी होते ही, पंछी बन उड़ जाते थे।

– रामावतार सिंह <ramawtarsingh@yahoo.co.in>

खेलघर का चमत्कार

"जिन्दगी में कुछ करके दिखाना है तो पढ़ो, सबसे बड़ी डिग्री हासिल करो" इसी सपने के साथ मैं एक मध्यमवर्गीय परिवार में बड़ी हो रही थी। पीएचडी. के दौरान, जब विश्वविद्यालय से वास्ता पड़ा, मेरी शिक्षा के बारे में विचार बदलने की शुरूआत हुई। परिश्रम का अवमूल्यन, सृजनशीलता का मर जाना, मैंने वहाँ पहली बार इतनी तीव्रता से महसूस किया। जब मैंने अपनी सृजनात्मक क्षमता को दबते हुए महसूस किया, मैं डिग्री के खोखले सपनों को छोड़कर सही मायने में वॉकआउट हो गई।

इसी दौरान 'अभिव्यक्ति' के साथ खेलघर में मुझे बच्चों के साथ रहकर सृजनात्मक गतिविधियाँ करने का मौका मिला। यहाँ हम सब साथ मिलकर तय करते थे कि हमें क्या करना है? क्या सीखना है? क्या खेलना है? क्या गाना है? यहाँ स्पर्द्धा या हार–जीत नहीं होती। आपस में कोई तुलना नहीं की जाती और ना ही किसी को ईनाम मिलता है।

खेलघर की गतिविधियों में हम स्थानीय संसाधनों का ही इस्तेमाल करके अपने परिवेश एवं स्वयं को खोजने की प्रक्रिया में रहते थे। इसी दौरान मैंने ऐसी चीजों को ढूँढ़ा, जो बचपन में स्कूल में खोयी थी। मुझमें इतनी ऊर्जा है, यह मैंने पहली बार पहचाना। मैंने जाना कि अपने–अपने चित्रों में अनोखापन है, जो सबको अलग पहचान देता है।

इस काम में मैंने अपनी सृजनात्मकता, मेरे अन्दर के खुलेपन और आत्मविश्वास को पहली बार महसूस किया। मेरा बच्चों के प्रति भी नजरिया बदला और मैं बच्चों को सिखाने की मानसिकता से निकलकर उनकी दोस्त बनी और साथ मिलकर सीखने की शुरूआत की।

मैं सोचती हूँ कि खेलघर की तरह ऐसे और मौके बनाने चाहिए, जहाँ बच्चे और बड़े साथ मिलकर सीख सकें और निरन्तर खोजने की प्रक्रिया शुरू कर सकें।

– सुजाता बाबर <sujata@abhivyakti.org.in>

कुछ नये मौके

अभिव्यक्ति *मीडिया फॉर डेव्हलपमेंट* :– नाशिक, महाराष्ट्र में स्थित यह स्वयंसेवी संस्था लोक–अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों को सशक्त करने व नए माध्यमों की पहचान के लिए कार्य कर रही है। साथ ही यह मुख्यधारा मीडिया, जिसमें टीवी, अखबार, फिल्मों आदि पर समीक्षात्मक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए अलग–अलग समुदायों के साथ काम कर रही है। इनकी मुख्य गतिविधियों में फिल्म–निर्माण, फोटोग्राफी, कठपुतली, खेल, थिएटर आदि शामिल हैं, जिनके माध्यम से लोग अपने मन की बात कह सकते हैं। अभिव्यक्ति के साथी वॉकआउट जैसे सृजनात्मक लोगों के साथ कार्य करने के इच्छुक है। अधिक जानकारी के लिए सुजाता बाबर, तुषार कुलकर्णी, सन्दीप चव्हाण, नितिन परांजपे से सम्पर्क कर सकते हैं।

पता : अभिव्यक्ति, 31 ए, सर्व्हे नं. 8, कल्याणी नगर, आनन्दवली शिवार, गंगापुर रोड, नाशिक – 422 005
फोन एवं फैक्स : 0253–2346128 email: abhivyakti@sancharnet.in, www.abhivyakti.org.in

'असल' : एक जैविक पहल :– अहमदाबाद के युवा साथी मिथुन द्वारा आरम्भ किया गया यह अभिक्रम विषाक्त रसायनों से मुक्त खाद्य पदार्थ, कपड़े और बर्तन आदि के उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए है। ''प्रकृति माता के पास इतने संसाधन हैं कि वह सभी की मूलभूत आवश्यकताएँ पूर्ण कर सके, किन्तु किसी एक व्यक्ति के भी लालच को पूर्ण करने की क्षमता उसमें नहीं है'' यह आदर्श वाक्य 'असल' का मार्गदर्शक सिद्धान्त है। वर्तमान शहरों में आर्थिक रूप से सम्पन्न लोगों में तनाव, निराशा जैसी समस्याएँ बढ़ने का कारण वर्तमान जीवन शैली है। इसे कृत्रिमता के अन्धकारमय पथ से प्रकृति की ओर मोड़ने का प्रयास 'असल' द्वारा किया जा रहा है। असल द्वारा रासायन मुक्त खाद्य पदार्थ जैसे – दालें, चावल, अनाज, गुड़, शक्कर, मुरब्बा, घी, मसाले आदि के अलावा खादी के वस्त्र, साबुन और ताम्बा, काँसा तथा पीतल के बर्तन भी बेचे जाते हैं।

'असल' एक वॉकआउट द्वारा आरम्भ किया गया सफल प्रयोग है। इसका लाभ अन्य स्वपथगामी भी ले सकतें हैं। इसे जानने–समझने तथा साथ मिलकर अनुभव प्राप्त करने के लिए आप अहमदाबाद जा सकते हैं।

सम्पर्क : मिथुन, 5, तेजपाल सोसायटी, फतेहनगर बस स्टॉप के पास, पालड़ी, अहमदाबाद–07 फोन नं. 079–6622020 / 22 e-mail: mail@asalworld.org

सबसे बड़ा कौन?

जंगल में एक चूहा रहता था। मौज मस्ती में अपना जीवन जीता, मर्जी के मुताबिक खाता–पीता, नये–नये बिल बनाता, पेड़ों पर चढ़ता और चींटियों के साथ खेलता। यही उसका जीवन था।

एक दिन उसको एक मोटी–ताजी और डरावनी बिल्ली नजर आई। उसे देखकर चूहे के तो होश ही उड़ गए। हाँफता हुआ भगवान से प्रार्थना करने लगा, ''हे प्रभु! मेरा कष्ट दूर करो और इस आफत से मुक्ति दिलाओ।'' इस पर भगवान वहाँ प्रकट हो गये और बोले कि बता तेरी क्या मदद करूँ? चूहे ने कहा, ''प्रभु, आप मुझे बिल्ली बना दीजिए, ताकि मैं अच्छी तरह जी पाऊँ। एक बिल्ली से लड़ने के लिये मुझे बिल्ली बनना बहुत जरूरी है।''

भगवान ने उसको तुरन्त बिल्ली बना दिया। बिल्ली बनकर वह थोड़े दिन चैन से जीया और फिर उसको एक दिन कुत्ता नजर आया। कुत्ते को देखकर उसके होश उड़ गये। भगवान से उसने फिर विनती की। भगवान आए, तो उसने कहा कि हे प्रभु, इस बार तो और भारी संकट आ पड़ा। इसका निवारण तुरंत कीजिये। भगवान ने कहा कि बता क्या करूँ? तो उस बिल्ली बने चूहे ने कहा, प्रभु कुत्ता बना डालो। भगवान ने एवमस्तु कहके कुत्ता बना दिया।

बाद में कुत्ता बनकर थोड़ा जीया और अचानक एक दिन शेर नजर आया। उसके रोम–रोम से पसीना टपकने लगा। तुरंत भगवान से प्रार्थना की, भगवान आए और बिना उसकी बात सुने ही सीधा शेर बना दिया।

शेर बना चूहा खुश होकर चिन्तारहित जीवन जीने लगा। आ हा! अब तो मैं जंगल का राजा बन गया। लेकिन कुछ ही दिनों में एक शिकारी नजर आया। डर के मारे उसके हाथ पाँव की शक्ति खत्म हो गई। तुरंत ही उसने भगवान से विनती की, तो भगवान हाजिर हुए। बोले, बता अब क्या दिक्कत है? उसने कहा आज मुझे शिकारी नजर आया। भगवान बोले, तो तुझे मैं शिकारी बना देता हूँ, फिर तू आसानी से दूसरे शिकारी से लड़ पाएगा।

इस पर वह बोला – नही प्रभु! मुझे और बड़ा नहीं बनना, आप मुझे वापस चूहा बना दीजिए और मेरा डर निकाल दीजिए। क्योंकि मेरे अन्दर का डर ही मुझे असुरक्षित होने का आभास कराता है। अगर मुझे निडर बनकर जीना है, तो मैं चूहे के जीवन में भी अपनी ताकत और क्षमता को पहचान कर जी सकता हूँ।

यह कहानी मैंने आचार्य महाप्रज्ञ की पुस्तक 'कैसे सोचें' में पढ़ी। इससे मुझे यह प्रेरणा मिली कि मैं भी अपनी क्षमता को पहचान कर सन्तोषप्रद जीवन जी सकता हूँ।

– प्रस्तुति : गोपाल शर्मा
<gopalpandit108@yahoo.com>

आगामी कार्यक्रम

स्वपथगामियों की केरल यात्रा

1 अप्रैल से 12 अप्रैल, 2004 के दौरान हम स्वपथगामी मिलकर उत्तरी केरल में 3 स्थानों की यात्रा करेंगे :– **कुम्भम म्यूरल्स** (एक समूह, जो अन्तःप्रेरणा को अधिक महत्त्व देता है), **कनवू** (एक अनूठा समुदाय है, जिसमें समग्र जीवनदृष्टि समाहित है) और **गुरुकुल वनस्पति उद्यान** (यह समूह प्रकृति के साथ एकरूप होकर जीव–जगत को पुनर्पल्लवित करते है)। ये तीनों स्थान हमारी स्वपथगामी होने की समझ बढ़ाने और आपसी अन्तर्सम्बन्धों को मजबूत करने में मददगार होंगे। आप इस यात्रा में शामिल होना चाहते हैं, तो कृपया निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार कर सम्पर्क करें :–

आप इस यात्रा में क्यों शामिल होना चाहते हैं? इस यात्रा से क्या फायदा या जरूरत महसूस करते हैं? अन्य स्वपथगामियों और यात्रा–स्थलों पर मिलने वाले लोगों के साथ आप अपनी क्या प्रतिभाएँ और अनुभव बाँटना चाहेंगे?

सम्पर्क :– शिल्पा <shilpa@swaraj.org>

शोध यात्रा

स्थानीय ज्ञान और पारम्परिक कला, कौशल एवं शिल्प को जानने के लिए **हनी बी** नेटवर्क द्वारा प्रतिवर्ष 8 दिवसीय शोध यात्राएँ की जाती हैं। ये क्षेत्र विशेष के एक गाँव से दूसरे गाँव तक पदयात्रा के रूप में लगभग 150 किमी की दूरी तय करती हैं।

आगामी शोध यात्रा अप्रैल–मई में गुजरात के समुद्रतटीय क्षेत्रों में जाएगी। इसमें भोजन एवं सामान ले जाने का खर्च प्रतिव्यक्ति 100 रुपये प्रतिदिन होगा। इसमें शामिल होने के इच्छुक साथी <www.sristi.org> देखें तथा सम्पर्क करें – अनिल गुप्ता, हनी बी नेटवर्क, आई आई एम, वस्त्रपुर, अहमदाबाद–15 <anilg@iimahd.ernet.in>

उद्यम में जिज्ञासा जागे,
प्रश्न उठे है उद्यम में।
उद्यम में ही उठे समस्या,
ज्या हल व्हेवे उद्यम में।

– श्री दयालचन्द्र सोनी, उदयपुर
('म्हूं अणभणियो शिक्षित हूँ')

अन्तर–धर्म संवाद कार्यक्रम

युवाओं के आध्यात्मिक विकास और अन्तर–सांस्कृतिक समझ को प्रोत्साहित करने के लिए 15 मई से 25 मई, 2004 तक कर्नाटक में अन्तर–धर्म संवाद कार्यक्रम का आयोजन किया होगा। इसमें जैन, इसाई, हिन्दू, बुद्ध और इस्लाम धर्मों पर समझ बनाने के लिए कुछ गतिविधियों, परम्पराओं, ध्यान आदि का अभ्यास किया जाएगा। इसमें 18–25 वर्ष के युवा शामिल हो सकते हैं।

बैंगलोर से आयोजन स्थल तक का प्रवास, भोजन एवं आवास का खर्च आयोजकों द्वारा वहन किया जाएगा। इच्छुक युवा साथी 15 अप्रैल से पूर्व निम्न प्रश्नों पर अपने विचार भेजें :–

1. अपनी पृष्ठभूमि सहित लगभग 500 शब्दों में अपना परिचय
2. इस कार्यक्रम में आप क्यों शामिल होना चाहते हैं? लगभग 500 शब्दों में लिखें।

सम्पर्क करें :– 'फाउण्डेशन फॉर यूनिवर्सल रेसपोंसिबिलिटी' यू जी एफ, कोर 4 ए, इंडिया हेबिटेट सेंटर, लोधी रोड़, दिल्ली–03 <furhhdl@vsnl.com>

आमन्त्रण

आज हमारे सामने यह बहुत बड़ी चुनौती है कि हम इस बनी–बनाई दुनिया में अपनी पहचान और अपने तरीके से जीवन जीने की आजादी को कैसे कायम रखें? वैश्विक आर्थिक–राजनीतिक व्यवस्था और मीडिया द्वारा आज 'रेडिमेड' चीजें परोसी जा रही है– बना–बनाया खाना, बने–बनाए कपड़े, बनी–बनाई दवाइयाँ, बने–बनाए रास्ते, बने–बनाए खेल, बने–बनाए सवाल, बने–बनाए जवाब, बने–बनाए विचार, बनी–बनाई शिक्षा – ये सब हमारी मौलिकता को नष्ट कर एकरूप ढाँचे में ढालने की ही साजिश है। ऐसी हिंसक व्यवस्था के चक्रव्यूह को तोड़कर अलग–अलग व छोटे–छोटे विकल्प खड़े करने के लिए हमें किसी प्रकार की भीड़ जुटाने की आवश्यकता नहीं, बल्कि जरूरत है अपनी क्षमताओं को पहचानकर सृजनात्मक जीवन जीने की, जिसमें हम आपसी विश्वास एवं अन्तर्निर्भरता की नींव पर आधारित स्वराज हासिल कर सकें। इसके लिए हर व्यक्ति को अपने सीखने की प्रक्रिया को अपने हाथ में लेना पड़ेगा।

वॉकआउट ऐसे ही लोग हैं, जो स्वराज की ओर निर्बाध रूप से अग्रसर हैं। यह पत्रिका इसी प्रकार की पहल करने वाले स्वपथगामियों द्वारा शुरू किया गया एक प्रयास है। यह अलग–अलग समुदायों, समूहों और व्यक्तियों के साथ संवाद स्थापित करने की एक कोशिश है, जिसके माध्यम से हम न केवल अपने अनुभवों का आदान–प्रदान करेंगे, बल्कि हम ऐसे लोगों, संस्थानों और स्थानों से भी रू–ब–रू होंगे, जो हमारे सीखने के सन्दर्भ बन सकते हैं।

हम उन सभी लोगों को खुले रूप से आमन्त्रित करते हैं, जो अपने जीवन में नए–नए प्रयोग कर रहे हैं और साथ मिलकर सीखने के मौके बना रहे हैं। हम अपेक्षा करते हैं कि आप भी अपने अनुभवों को बाँटें और विविधतापूर्ण खूबसूरत दुनिया के निर्माण के प्रयास में सहयोग करें। साथ ही हम उन लोगों को भी आमन्त्रित करते हैं, जो इस पत्रिका के सम्पादन में सहयोग करना चाहते हैं।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :–

रामावतार सिंह <ramawtarsingh@yahoo.co.in>
शिक्षान्तर, 21 फतेहपुरा, उदयपुर – 04 (राजस्थान) फोन – 0294–2451303